शब्द–ब्रह्म
ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 मई 2015
पीअर रीव्यूड रिसर्च जर्नल

सिगालोवाद-सुत्तः सुखी मानव जीवन की आधारशिला

डॉ.ज्ञानादित्य शाक्य
सहायक प्रोफेसर
स्कूल आफ बुद्धिस्ट स्टडीज एण्ड सिविलाईजेशन
गौतम बुद्ध विश्वविद्यालय, ग्रेटर नोएडा
गौतम बुद्ध नगर, उत्तर प्रदेश, भारत

शोध संक्षेप

यह सर्वविदित है कि शाक्यमुनि गौतम बुद्ध के समस्त उपदेशों का संकलन ही कालान्तर में पालि तिपिटक-साहित्य के रूप में संग्रहीत किया गया। यह विनयपिटक, सुत्तपिटक एवं अभिधम्मपिटक के रूप में विभाजित किया गया है। बौद्ध साहित्य में दीघनिकाय एक विशिष्ट व लोकप्रिय ग्रन्थ है, जो पालि तिपिटक-साहित्य का अच्छा संग्रह माना जाता है। दीघनिकाय नामक ग्रन्थ में संकलित सिगालोवाद-सुत्त एक ऐसी देशना है जो सुखी गृहस्थ से सम्बन्धित नियमों और विनय को जानने और समझने के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण है। इस सुत्त के माध्यम से शाक्यमुनि गौतम बुद्ध ने मानव जीवन के ढंग और आचार को पूर्णतः उजागर किया है। सिगालोवाद-सुत्त, सुखी गृहस्थ-विनय की आधारशिला है। इसमें वर्णित सामग्री सुखी मानव जीवन की कुंजी है। इसमें वर्णित सामग्री के सम्यक् अनुशीलन के द्वारा व्यक्ति अपने व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक एवं आर्थिक जीवन में चौमुखी विकास एवं खुशहाली प्राप्त कर सकता है। सिगालोवाद-सुत्त में वर्णित नैतिक मूल्यों का जितना महत्व बुद्धकाल में था, उतना ही महत्वपूर्ण आज भी है और भविष्य में भी उतना ही महत्वपूर्ण रहेगा; क्योंकि बुद्धवाणी कभी भी अन्यथाभाव, निरर्थक एवं परिवर्तित नहीं होती, वह सदैव सार्थक, मांगलिक एवं लोक-हितार्थ ही प्रस्रवित हुआ करती है। यदि व्यक्ति अपने जीवन में सुख-शान्ति की अनुभूति करता हुआ समाज, देश एवं सम्पूर्ण विश्व को समस्याओं से मुक्त बनाकर सुख-शान्ति, समता, सौहार्द, भाईचारे एवं विश्व-बन्धुत्व की सुखद् भावनाओं की स्थापना करना चाहता है, तो उसे बुद्धोपदिष्ट सिगालोवाद-सुत्त के अनुशीलन से श्रेष्ठ एवं बुनियादी उपाय संसार में अन्यत्र नहीं मिल सकता है। इस प्रकार से यह कहा जा सकता है कि सामाजिक, पारिवारिक, व व्यवहारिक जीवन को सुखमय बनाने हेतु सिगालोवाद-सुत्त में वर्णित नैतिक मूल्यों का पालन बहुत ही प्रासंगिक है।

मुख्य शब्द

शाक्यमुनि गौतम बुद्ध, पालि तिपिटक साहित्य, सुत्तपिटक, दीघनिकाय, सिगालोवाद-सुत्त, प्राणातिपात, चैर्य, असत्य भाषण, दुष्चरित्र, राग, द्वेष, मोह, ईष्या, घृणा, क्रोध, लोभ, निर्लज्जता, औद्धत्य-कौकृत्य, परमपद, शील, समाधि, प्रज्ञा एवं सम्यक् आजीविका।

प्रस्तावना

जीवन की सार्थकता एवं उपादेयता के लिए शान्ति की उपस्थिति आवश्यक ही नहीं, अपितु अनिवार्य भी है। इस लोक में न केवल मनुष्य, अपितु समस्त जीवित सत्व अपने सम्पूर्ण जीवन को शान्ति के साथ व्यतीत करना चाहते हैं। संसार में ऐसा कोई भी प्राणी नहीं है, जो सुखमय एवं शान्तिपूर्ण जीवन की चाह न रखता हो। जो व्यक्ति अपने जीवन में सुख-शान्ति की चाह करता है, तो उसे अपने समान ही अन्य सत्वों को

शब्द–ब्रह्म
ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 मई 2015
पीअर रीव्यूड रिसर्च जर्नल

समझकर सद्व्यवहार करना चाहिए और उनकी भी सुख-शान्ति का ख्याल रखना चाहिए। मानव जीवन में सुख की चाह करने वाले व्यक्ति को दूसरों के सुख में बाधा उत्पन्न करके उसे सुख से वंचित नहीं करना चाहिए। ऐसा पुद्गल स्वयं कभी भी स्थायी रूप से सुखानुभूति नहीं कर सकता है। व्यक्ति को दूसरों के हित-सुख का हेतु बनना चाहिए, न कि किसी के दुःख और संताप का। लोक के समस्त प्राणियों के प्रति सम्यक् व्यवहार करने के लिए उपदेश देते हुये शाक्यमुनि गौतम बुद्ध कहते हैं कि सुख चाहने वाले प्राणियों को, अपने सुख की चाह से जो दण्ड से मारता है, वह मरकर सुख नहीं पाता। सुख चाहने वाले प्राणियों को अपने सुख की चाह से जो दण्ड से नहीं मारता, वह मरकर सुख को प्राप्त होता है। यह सर्वविदित सत्य है कि व्यक्ति अपने आपको सबसे अधिक प्रेम करता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने आपको सुखी एवं शान्त बनाना चाहता है। अतः व्यक्ति को स्वयं की शान्ति के समान ही दूसरों की भी सुख-शान्ति की कामना करना चाहिए तथा दूसरों की शान्ति में बाधा नहीं डालनी चाहिए।

मानव जीवन में शान्ति की अति विशिष्ट भूमिका है। मानव जीवन में व्याप्त समस्याओं से मुक्ति के बाद उत्पन्न चित्त की प्रसन्नता से परिपूर्ण उत्कृष्ट अवस्था ही शान्ति है, फिर चाहे वह व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय में से किसी से भी सम्बन्धित हो। व्यक्ति के लिए चित्त की शान्ति सर्वाधिक महत्वपूर्ण है, जिसके द्वारा व्यक्ति अपने घर-परिवार, समाज, देश एवं सम्पूर्ण विश्व में शान्ति की स्थापना कर सकता है। अर्थात् कहा जा सकता है कि मानसिक (आध्यात्मिक) शान्ति के द्वारा पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों में भी सम्यकरूपेण शान्तिपूर्ण सुखद् वातावरण की स्थापना की जा सकती है।

मानव जीवन में व्याप्त समस्याओं से मुक्ति के लिए शाक्यमुनि गौतम बुद्ध ने शील, समाधि और प्रज्ञा के सम्यक् अनुशीलन को आवश्यक ही नहीं, अपितु अनिवार्य भी बताया है। बुद्धोपदिष्ट सद्धर्म के सम्यक् अनुशीलन से व्यक्ति अपने समस्त चित्तमलों को नष्ट करके श्रेष्ठ (आर्य) व्यक्ति बन सकता है, जिसके परिणामस्वरूप वह समस्त दुःखों का नाश करने में सक्षम हो जाता है। जीवन में व्याप्त दुःखों को समूलतः नाश करने के उपरान्त ही व्यक्ति निर्वाण रूपी शान्ति की अवस्था को प्राप्त कर सकता है। जीवन की इसी सुखद् अवस्था को शान्तपद, परम-सुख, अमृत-पद एवं परमपद कहा जाता है। जीवन में व्याप्त जटाओं (उलझनों) को समूलतः नष्ट करके अविनाशी शान्ति को प्राप्त किया जा सकता है। उन्होंने शील, समाधि और प्रज्ञा के सम्यक् अनुशीलन को शान्ति (दुःखमुक्ति) की अवस्था का उपाय बताया है।

यह लोक विभिन्न प्रकार की समस्याओं से आवृत है। मानव जीवन में विद्यमान समस्याओं को कायिक एवं मानसिक समस्याओं के रूप में आसानी से समझा जा सकता है। मानव जीवन में विद्यमान कायिक समस्याओं के प्रभाव से संसार को कोई भी प्राणी नहीं बच सकता है। कायिक समस्याओं का आविर्भाव संस्कारों की आसक्ति के कारण होता है, जिनका सभी प्राणियों को सामना करना पड़ता है, चाहे मनुष्य हो या पशु हो, आर्य हो या अनार्य हो। यह सर्वविदित सत्य है कि जो अनित्य होता है, वह दुःख देने वाला ही होता है। फिर इन्हीं दुःखों के कारण जीवन में समस्याओं का आविर्भाव होता है और

शब्द–ब्रह्म
ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 मई 2015
पीअर रीव्यूड रिसर्च जर्नल

जीवन में अशान्तिपूर्ण वातावरण की उत्पत्ति होती है। मानव जीवन में कायिक समस्याओं की अपेक्षा मानसिक समस्याएँ अधिक कष्टकारक होतीं हैं। व्यक्ति की मानसिक समस्याएँ न केवल स्वयं को कुप्रभावित करतीं हैं, अपितु दूसरे लोगों को भी समस्याग्रस्त बनातीं हैं, जिसके परिणामस्वरूप आसपास के वातावरण में भी अशान्तिपूर्ण माहौल का आविर्भाव होता है। इसके साथ ही व्यक्ति की मानसिक समस्याओं के कारण व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय आदि विभिन्न प्रकार की समस्याओं का भी आविर्भाव होता है।

भौतिकवादी युग में मानव जीवन दुःख एवं उलझनों से पूर्णरूपेण आवृत हो चुका है। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में रोटी, कपड़ा और मकान की सामान्य समस्याएँ हैं इन समस्याओं के साथ-साथ कुछ स्थायी एवं अटालनीय समस्याएँ हैं। जरा, व्याधि एवं मरण - ये जीवन की ऐसी अवस्थाएँ हैं, जहाँ संसार की प्रत्येक वस्तु में अनित्यता धर्म विद्यमान होने के कारण ये समस्याएँ अनायास होती रहती हैं, जिनसे प्रत्येक व्यक्ति को जूझना पड़ता है। इनके अतिरिक्त कुछ समस्याएँ व्यक्ति के मानसिक क्रियाकलापों के परिणाम से उत्पन्न होती हैं। मानव का जीवन राग, द्वेष, मोह, ईष्या, घृणा, क्रोध, लोभ, निर्लज्जता एवं औद्धत्य-कौकृत्य आदि अकुशल भावनाओं की अतिशयता के कारण और अधिक दुःखमय एवं समस्याग्रस्त हो जाता है। ये समस्याएँ मनुष्य के चित्त में विद्यमान अकुशल चैतसिकों पर निर्भर रहती हैं। ये समस्याएँ व्यक्ति के अकुशल चैतसिकों का ही दुष्परिणाम होती हैं। मानव के इसी प्रकार के व्यक्तिगत जीवन को सुखी बनाने के लिए व्यक्ति को सर्वप्रथम अपनी मानसिक प्रवृत्तियों (विचारों) में परिवर्तन लाकर कुशल प्रवृत्तियों में लगाना चाहिए, अन्यथा लोभ-लालच जैसे दूषित विचारों से ग्रसित होकर व्यक्ति प्राणातिपात, चोरी, व्यभिचार, असत्यभाषण एवं नशीले पदार्थों का सेवन इत्यादि अकुशल कर्मों में लिप्त हो जाता है। इसके अनन्तर उसका जीवन और भी समस्याओं के जंजाल में फँसता चला जाता है।

यह सर्वविदित है कि नैतिकता से परिपूर्ण कुशल कर्म ही सुखी मानव जीवन की आधारशिला है। सदाचार के सम्यक् अनुशीलन के अभाव में व्यक्ति के लिए कुशल कर्मों का सम्पादन सम्भव नहीं है। उन्होंने मानव जीवन को सुखमय बनाने हेतु सत्य धर्म का उपदेश किया। उनके धर्म का मुख्य उद्देश्य मानव जीवन को सुखमय व कल्याणकारी बनाना है। उन्होंने इस सद्धर्म की देशना केवल प्रव्रजितों के लिए आध्यात्मिक क्षेत्र में उन्नति प्राप्ति करने हेतु ही नहीं, अपितु सुखमय एवं शान्तिपूर्ण जीवन व्यतीत करने हेतु गृहस्थ व्यक्तियों के लिए गृहस्थ धर्म का उपदेश किया है। बुद्धोपदिष्ट सद्धर्म में वर्णित गृहस्थ-विनय का सम्यक् रूप से अनुशीलन एवं सम्पादन करने से व्यक्ति अपने जीवन में विद्यमान समस्याओं से छुटकारा पा सकता है। इस प्रकार से मानव जीवन में 'गृहस्थ-विनय' का अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यह सर्वविदित है कि पालि तिपिटक साहित्य में वर्णित विषयवस्तु में गृहस्थ-विनय को विशेष रूप से देखा जा सकता है।

यह सर्वविदित है कि शाक्यमुनि गौतम बुद्ध के समस्त उपदेशों का संकलन ही कालान्तर में पालि तिपिटक-साहित्य के रूप में संग्रहीत किया। यह विनयपिटक, सुत्तपिटक एवं अभिधम्मपिटक के रूप में विभाजित किया गया है। सुत्तपिटक

शब्द–ब्रह्म
ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 मई 2015
पीअर रीव्यूड रिसर्च जर्नल

भी दीघनिकाय, मज्झिमनिकाय, संयुत्तनिकाय, अंगुत्तरनिकाय एवं खुद्दकनिकाय पाँच भागों में विभक्त है। खुद्दकनिकाय के पन्द्रह भाग - खुद्दकपाठ, धम्मपद, उदान, इतिवुत्तक, सुत्तनिपात, विमानवत्थु, पेतवत्थु, थेरगाथा, थेरीगाथा, जातक, निद्देस, पटिसम्भिदामग्ग, अपदान, बुद्धवंस एवं चरियापिटक हैं। बौद्ध साहित्य में दीघनिकाय एक विशिष्ट व लोकप्रिय ग्रन्थ है, जो पालि तिपिटक-साहित्य का अच्छा संग्रह माना जाता है।

दीघनिकाय नामक ग्रन्थ में संकलित सिगालोवाद-सुत्त1 एक ऐसी देशना है जो सुखी गृहस्थ से सम्बन्धित नियमों और विनय को जानने और समझने के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण है। इस सुत्त के माध्यम से शाक्यमुनि गौतम बुद्ध ने मानव जीवन के ढंग और आचार को पूर्णतः उजागर किया है। उन्होंने सिगाल नामक गृहस्थ व्यक्ति के चित्त में विद्यमान मिथ्या विचारों का निराकरण करते हुए सत्य धर्म का मार्ग प्रशस्त किया। इसमें उन्होंने गृहपति-पुत्र सिगाल को छह दिशाओं की अभ्यर्थना के रूप में आर्य-विनय को बतलाया। शाक्यमुनि गौतम बुद्ध द्वारा माता-पिता इत्यादि छह दिशाओं की अभ्यर्थना के माध्यम से छह इकाइयों की वास्तविक पूजा बतलाये जाने से सिगाल के चित्त में पिता के प्रति अन्धश्रद्धा की पूजा का विनाश हो गया और वास्तविक पूजा करने के लिए श्रद्धा-भावना जाग्रत हुई। तदुपरान्त सिगाल के चित्त में बुद्ध एवं धम्म के प्रति भी असीम श्रद्धा भावना प्रादुर्भूत हुई, जिसके परिणमस्वरूप वह आर्य-विनय ग्रहण कर उनका आजीवन उपासक बना।

देश के प्रत्येक समाज में अकुशल कर्म को निन्दनीय कर्म ही माना जाता है; क्योंकि ये कर्म स्वयं के लिए एवं अन्य सत्वों के लिए भी हानिकारक एवं अनिष्टकर परिणाम देते हैं। प्राणातिपात, चैर्य, असत्य भाषण एवं दुष्चरित्र जैसे दुर्गुण समाज के लिए बहुत ही हानिकारक हैं। व्यभिचार एक हानिकारक एवं अकुशल प्रवृत्ति है, जो समाज के नर-नारी के जीवन की वास्तविक सुख-शान्ति को भंग करके केवल दुःखों एवं समस्याओं को प्रादुर्भूत करती है। गृहस्थ जीवन को आदर्श व सुखी बनाने के लिए शाक्यमुनि गौतम बुद्ध ने व्यभिचार व वेश्यावृत्ति जैसी कुप्रवृत्तियों से विरत रहने के लिए उपदेश दिये हैं। इसके साथ ही उन्होंने कहा कि व्यक्ति को इस प्रकार की गलत व हानिकारक गतिविधियों में संलग्न होकर धनार्जन भी नहीं करना चाहिए। पंचशील धर्म की देशना के समय भी शाक्यमुनि गौतम बुद्ध ने तृतीय शील2 पर विशेष जोर दिया। वे कहते हैं कि कामेसुमिच्छाचारा वेरमणि सिक्खापदं समादियामि। अर्थात् मैं पर-स्त्री गमनादि, नीति विरुद्ध कामाचार से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।3 अर्थात् यह कहा जा सकता है कि व्यक्ति को परस्त्रीगमन से विरत रहकर महिलाओं को उचित सम्मान एवं संरक्षण प्रदान करना चाहिए। इसके साथ ही सम्मा कम्मन्तो4 (सम्यक् कर्म) की देशना के माध्यम से शाक्यमुनि गौतम बुद्ध ने काम-मिथ्याचार से विरत रहने को एक कुशल कर्म के रूप में बताया है। वे कहते हैं कि जो अपनी पत्नी से असन्तुष्ट रहता है, वेश्याओं और पराई स्त्रियों के साथ दिखायी देता है, वह उसकी अवनति का कारण है। सुखी एवं सम्पन्न मानव जीवन हेतु इन बुरे कर्मों का परित्याग करके अप्राणातिपात, अचौर्य, सत्य भाषण एवं सद्चरित्र जैसे नैतिक मूल्यों का विकास करना नितान्त आवश्यक है। वास्तव में, ये नैतिक मूल्य ही जीवन मूल्य हैं। सुखी मानव जीवन की प्राप्ति में प्राणातिपात आदि अकुशल कर्म बाधक तत्व होते हैं। प्राणातिपात आदि

शब्द–ब्रह्म
ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 मई 2015
पीअर रीव्यूड रिसर्च जर्नल

अकुशल कर्मों को निन्दनीय बतलाते हुए शाक्यमुनि गौतम बुद्ध कहते हैं कि -

पाणातिपातो अदिन्नादानं, मुसावादो च वुच्चति।
परदारगमन×चेव नप्पसंसन्ति पण्डिता ति।।5

अर्थात् प्राणातिपात, चोरी, मृषावाद एवं परस्त्रीगमन - इन चार दुष्कर्मों का विद्वज्जन अनुमोदन नहीं करते।

यह सर्वविदित सत्य है कि अकुशल कृत्यों की उत्पत्ति छन्द, द्वेष, मोह और भय के कारण ही होती है। लोभ, द्वेष एवं मोह जैसे अकुशल विचारों का प्रादुर्भाव पाप का चिन्तन करने वाले पुरुष के मन में ही उत्पन्न होते हैं। ये तीनों विचार व्यक्ति के अस्तित्व को उसी तरह से नष्ट कर देते हैं, जैसे कि केले का फल केले के वृक्ष को नष्टकर देता है। अकुशल धर्मों का सेवन करने वाला प्राणी सर्वप्रथम स्वयं अपना ही विनाश करता है। अतः व्यक्ति को सुखमय एवं सम्पन्न जीवन के लिए हेतु छन्द, द्वेष, मोह और भय के होने पर भी नैतिक मूल्यों का विकास करना चाहिए। अनैतिक मूल्यों की उपस्थिति को यश एवं ख्याति के नाश का कारण बतलाते हुए शाक्यमुनि गौतम बुद्ध कहते हैं कि -

छन्दा दोसा भया मोहा, यो धम्मं नातिवत्तति।
आपूरति यसो तस्स, सक्कपक्खे व चन्दिमा ति।।6 अर्थात् छन्द, द्वेष, मोह और भय के कारण जो धर्म का अतिक्रमण नहीं करता है, उसका यश शुक्लपक्ष के चन्द्रमा की तरह निरन्तर वृद्धिंगत होता रहता है।

सुखी गृहस्थ जीवन के लिए नैतिक मूल्यों का सम्यक् विकास नितान्त आवश्यक है। प्राणियों के लिए खुशहाली की प्राप्ति हेतु गलत आदतों का परित्याग करना अत्यधिक उपयोगी है। शाक्यमुनि गौतम बुद्ध कहते हैं कि भोग-सम्पदा एवं अन्य प्रकार की सम्पत्तियों का विनाश छह कारणों के परिणामस्वरूप होता है। अतः इनके दोषों को भलीभाँति समझकर उन्हें हमेशा के लिए त्याग देना चाहिए। जीवन को दुःखरहित एवं खुशहाल बनाने के लिए इनका त्याग परम आवश्यक है। ये छह कारण निम्नवत् समझे जा सकते हैं - मद्यपान आदि का सेवन करना, विकाल अर्थात् अनुचित समय पर चैराहों पर घूमना, सामाजिक नृत्य एवं उत्सवों में भाग लेना, जुआ एवं प्रमाद की ओर ले जाने वाले खेलों में भाग लेना, पाप-मित्रों की संगति करना एवं आलस्य करना। इनके अनवरत सेवन करने से व्यक्ति के पास अर्जित पैत्रक सम्पत्ति एवं स्वयं से एकत्र किया गया धन अतिशीघ्र क्षय हो जाता है। अतः दुःख एवं समस्या उत्पन्न करने वाले इन गलत आदतों का परित्याग करके व्यक्ति को नैतिक मूल्यों का विकास करना चाहिए।

पापी मित्रों की संगति के कारण व्यक्ति तमाम निन्दनीय एवं बुरे कर्मों में लिप्त हो जाता है। बुरे कर्मों के कारण व्यक्ति की समस्याएँ घटती नहीं, बल्कि निरन्तर बढ़ती ही जाती हैं। पापी मित्रों की संगति के कारण परिवारों के लड़के-लड़कियों में चरस, गांजा एवं ड्रग्स आदि जैसे नशीले पदार्थों के सेवन की प्रवृत्ति दिनों-दिन बढ़ती जा रही है। इन्हीं नशीले पदार्थों एवं मद्यपान आदि करने के कारण अधिकतर लड़के-लड़कियाँ परिवारों को छोड़ देते हैं, जिसके कारण वे हत्या, चोरी, डकैती, अपहरण, बन्धक बनाना या ब्लैकमेल करना एवं ठगना आदि जैसे अपराधों को करने से भी भय नहीं खाते हैं। इसीलिए शाक्यमुनि गौतम बुद्ध ने जीवन को सुखी एवं समस्याओं से मुक्त रखने के लिए पापी एवं नीच मित्रों की संगति से पूर्णरूपेण विरत रहने का उपदेश दिया है। निन्दनीय एवं बुरे कर्मों से मुक्त रहने के लिए नीच मित्रों की संगति न करने का

शब्द–ब्रह्म
ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 मई 2015
पीअर रीव्यूड रिसर्च जर्नल

उपदेश देते हुए वे कहते हैं कि दुष्ट मित्रों का सेवन न करें, न अधम पुरुषों का सेवन करें। अच्छे मित्रों का सेवन करें, उत्तम पुरुषों का सेवन करें। इस प्रकार के पापी मित्रों को व्यक्ति को उसी प्रकार छोड़ देना चाहिए, जैसे कि समझदार व्यक्ति भयानक मार्ग को छोड़ देता है। इसीलिए कुमित्रों को बुरे कर्मों के प्रादुर्भाव का कारण बतलाते हुए शाक्यमुनि गौतम बुद्ध कहते हैं कि -

अदत्थुहरो मित्तो, यो च मित्तो वचीपरो।
अनुप्पियं च यो आह, अपायेसु च यो सखा।।7

अर्थात् परधनहारी, बातूनी, चाटुकार एवं पापकर्मों में सहायक - ये चार मित्र होते हुए भी वस्तुतः अमित्र ही हैं - ऐसा बुद्धिमान पण्डित को समझ लेना चाहिए।

गलत आदतों का परित्याग करने हेतु व्यक्ति को अप्रमाद की नितान्त आवश्यकता है। नैतिक मूल्यों के विकास के द्वारा ही व्यक्ति सुख-समृद्धि हासिल कर सकता है। शाक्यमुनि गौतम बुद्ध ने ऐसे प्रमादी व्यक्ति को सम्पत्ति का नाशक बताया है। इसी प्रकार से अप्रमादी एवं कर्मठ व्यक्ति सदैव धनवान बना रहता है और वह अप्रमादी (आलस से रहित) व्यक्ति अपनी इच्छित वस्तुओं को प्राप्त कर लेता है। अप्रमादी व्यक्ति को ऐश्वर्य एवं सम्पत्तिशाली बतलाते हुए शाक्यमुनि गौतम बुद्ध कहते हैं कि -

योध सीतं च उण्हं च, तिणा भिथ्यो न म××ति।
करं पुरिसकिच्चानि, सो सुखं न विहायती ति।।8

अर्थात् जो पुरुष शीत-उष्ण आदि कठिनाइयों को तणवत् (घास) हीन समझता हुआ अपने कार्यों में लगा रहता है, वह कभी निर्धन नहीं होता।

जब कोई व्यक्ति पुण्यकर्मों को छोड़कर पापकर्मों में रत हो जाता है, तब उसका विकास रुक जाता है। व्यक्ति प्रमाद या मद आदि के वशीभूत होकर नीच-कर्म करने लगता है, जिसके कारण उस पर दुःख के बादल मँडराने लगते हैं। इसीलिए शाक्यमुनि गौतम बुद्ध ने प्रमाद का परित्याग करते हुए कुशल कर्मों के सम्पादन का उपदेश दिया है। प्रमाद ही सत्व के जीवन की सुख-शान्ति एवं विकास का अवरोधक तत्व है। इसीलिए प्रमादी सत्व कभी भी दुःखमुक्ति की अवस्था की प्राप्ति नहीं कर पाते हैं। समाज में व्यक्ति को दुःखमुक्ति की अवस्था तक पहुँचाने के पवित्र उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने उसे प्रमाद में न फँसने का उपदेश दिया।

आलस्यविहीन पुरुष सदैव अपने लक्ष्य की प्राप्ति हेतु विपरीत कठिनाइयों को अपने अनुकूल ढाल लेता है और अपने अनुकूल बनाकर अपने कार्य में निरन्तर सम्यक् दृष्टि रखते हुए उचित एवं अनुचित को समझते हुए कार्य करता जाता है और उसके इस प्रकार के अथक् परिश्रम से वह धन, ऐश्वर्य, भोग-विलास की वस्तुओं को अनायास ही पा लेता है। और उसका जीवन सदैव खुशियों से परिपूर्ण रहता है। दुःख कभी भी उसके दरवाजे पर दस्तक देने नहीं आता है। शाक्यमुनि गौतम बुद्ध ने प्रमाद को मृत्यु का पद कहा और अप्रमाद को अमृत कहा है। वे कहते हैं कि प्रमाद से सत्व की सुगति नहीं, बल्कि केवल दुर्गति होती है। उन्होंने प्रमाद को मृत्यु के समान कहा है। आलस्य को छोड़कर अप्रमाद जैसे नैतिक मूल्य के विकास पर जोर देजे हेए शाक्यमुनि गौतम बुद्ध कहते हैं कि -

अप्पमादो अमत-पदं, पमादो मच्चुनो पदं।
अप्पमत्ता न मीयन्ति ये पमत्ता यथा मता।।9

अर्थात् प्रमाद (आलस्य) न करना अमृतपद है और प्रमाद (करना) मृत्युपद। अप्रमादी (वैसे) नहीं मरते, जैसे कि प्रमादी मरते हैं।

शाक्यमुनि गौतम बुद्ध अच्छी तरह जानते थे कि इन्सान की भौतिक सुख-सुविधाओं के लिए

शब्द–ब्रह्म
ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 मई 2015
पीअर रीव्यूड रिसर्च जर्नल

आर्थिक स्थिरता का होना जरूरी है। इसीलिए, उन्होंने दूसरों का बिना शोषण किये ही लोगों को खूब मेहनत और ईमानदारी से धनार्जन करने का उपदेश दिया है। मानव जीवन को सुखमय बनाने के उद्देश्य से उन्होंने मिथ्या आजीविका का परित्याग कर सम्यक् आजीविका के अनुशीलन पर विशेष बल दिया है। वे कहते हैं कि एक गृहस्थ को बड़े परिश्रम से, बाहुबल से, पसीना बहाकर धन कमाना चाहिए। इसके साथ ही धन कमाने के लिए आलस्य नहीं करना चाहिए। सर्दी, गर्मी, धूप-छांव आदि की परवाह न कर अपने परिवार का भरण-पोषण करने के लिए धन कमाना चाहिए, न कि अनैतिक व नाजायज ढंग से। व्यक्ति को अपनी आजीविका उचित व अहिंसात्मक ढंग से कमानी चाहिए। उन्होंने धन कमाने के लिए आलस्यरहित होकर कार्य करने के लिए उपदेश दिया है। वास्तव में, निरालस-भाव एवं अप्रमाद ही निर्धनता जैसी समस्याओं के स्थायी निदान का हल हंै। सही तरीके से धनार्जन करके व्यक्ति को उसके सही उपयोग हेतु आर्थिक प्रबन्धन का मन्त्र प्रदान करते हुए शाक्यमुनि गौतम बुद्ध कहते हैं कि -

भोगे संहरमानस्स भमरस्सेव इरीयतो।
भोगा सन्निचयं यन्ति वम्मिको वुपचीयति।।
एवं भोगे समाहत्वा अलमत्तो कुले गिही।
चतुधा विभजे भोगे स वे मित्तानि गन्थति।।
एकेन भोगे भुञ्जेÕय द्वीहि कम्मं पयोजये।
चतुत्थं च निधापेÕय आपदासु भविस्सती ति।।10

अर्थात् जो मधुमक्खी की तरह भोगों का संचय करता है, उसके वे सभी भोग वल्मीकि की तरह उपचित रहते हैं। इस तरह भोगों को संचय कर अर्थसम्पन्न कुलवाला गृहस्थ अपने धन का चार भागों में विभाजन करे। वही मित्रों का संचय कर सकता है। उन भोगों में से एक भाग का स्वयं दैनिक उपयोग करे, दो भागों को घर के कार्य में प्रयुक्त करे, और चतुर्थ भाग को संकट के समय काम में लाने के लिए सुरक्षित रखे।

सिगालोवाद-सुत्त और आर्थिक सिद्धांत

सिगालोवाद-सुत्त एक ऐसी देशना है जो सुखी गृहस्थ से सम्बन्धित नियमों और विनय के साथ-साथ जीवनोपयोगी आर्थिक सिद्धान्तों की भी व्याख्या करता है। यह सत्य है कि इसमें वर्णित सामग्री के सम्यक् अनुशीलन के द्वारा व्यक्ति अपने दैनिक जीवन को सुखपूर्वक व्यतीत करते हुए तथा उत्तरोत्तर क्रमिक विकास करते हुये आध्यात्मिक जीवन में भी उन्नति प्राप्त कर अपना सर्वांगीण विकास कर सकता है। सम्यक् आजीविका से युक्त आर्थिक नीति के अनुशीलन के द्वारा व्यक्ति न केवल अपना ही कल्याण करता है, अपितु अन्य मनुष्यों एवं प्राणियों का भी कल्याण करता है। अतः बुद्धोपदिष्ट आर्थिक सिद्धान्तों की दृष्टि से भी यह देशना बहुत उपयोगी है, जो लोक के समस्त सत्वों के हित-कल्याण एवं सुख-शान्ति की स्थापना के लिये आधुनिक विश्व में बहुत ही प्रासंगिक है।

सिगालोवाद-सुत्त में वर्णित नैतिक मूल्यों के सम्यक् अनुशीलन से वर्तमान काल में व्याप्त समस्याएँ जैसे -अकुशल प्रवृत्तियाँ, अनिद्रा, तनाव, चिन्ता, व्याकुलता, परेशानी, दुःख, अशान्ति, खराब दाम्पत्य जीवन, वृद्धजनो का बहिष्कार, आपसी मतभेद, लड़ाई-झगड़े, बच्चों की अनुशासनहीनता, आत्मीयता एवं लगाव की कमी, विवाह-विच्छेद, पारिवारिक विघटन, महिला उत्पीड़न, व्यभिचार, बलात्कार, वेश्यावृत्ति, विधवाओं के प्रति दुर्व्यवहार , बाल-श्रम, मद्यपान, निर्धनता एवं भ्रष्टाचार आदि अनेक गम्भीर एवं जटिल समस्याओं को केवल नियन्त्रित ही नहीं, अपितु समूलतः नष्ट भी किया जा सकता है। इसके साथ ही समाज में व्याप्त

शब्द–ब्रह्म
ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 मई 2015
पीअर रीव्यूड रिसर्च जर्नल

पारिवारिक लड़ाई-झगड़े, आपसी कलह, अत्याचार, दास प्रथा, नारी जाति का शोषण जैसी अनेक समस्याओं का नाश करके भाईचारे, बन्धुत्व, समता, समानता एवं सुख-शान्ति से परिपूर्ण सुखोत्पादक वातावरण की स्थापना की।

यदि सिगालोवाद-सुत्त में वर्णित नैतिक मूल्यों के अनुशीलन से बुद्धकालीन मनुष्यों एवं प्राणियों का कल्याण हुआ, तो वर्तमान काल के व्यक्तियों का भी कल्याण एवं उद्धार हो सकता है; क्योंकि शाक्यमुनि गौतम बुद्ध का समस्त धम्म किसी काल का मुखापेक्षी नहीं है। बुद्धोपदिष्ट सिगालोवाद-सुत्त आज भी उतनी ही प्रासंगिक है, जितना कि बुद्धकाल में था। यदि व्यक्ति वास्तव में अपने जीवन में सुख-शान्ति की अनुभूति करता हुआ समाज एवं देश को समस्याओं से रहित बनाकर सुख-शान्ति, भाईचारे एवं विश्व-बन्धुत्व की भावनाओं को स्थापित करना चाहता है, तो उसे सिगालोवाद-सुत्त में वर्णित नैतिक मूल्यों से श्रेष्ठ एवं बुनियादी उपाय संसार में नहीं मिल सकता है। इसके अनुशीलन के द्वारा व्यक्ति व्यवहारिक जीवन को सुखमय बनाकर उत्तरोत्तर विकास करते हुए आध्यात्मिक जीवन में उन्नति प्राप्त कर अपना सर्वांगीण विकास करता है। अतः बुद्धोपदिष्ट सिगालोवाद-सुत्त लोक के समस्त सत्वों के हित-कल्याण एवं सुख-शान्ति की स्थापना के लिए विश्व में फैलाने योग्य नैतिक मूल्यों की व्याख्या करता है।

निष्कर्ष

यदि संसार में विद्यमान समस्याओं का अध्ययन किया जाये, तो अधिकतर समस्याओं के निदान में किसी न किसी रूप में बुद्धोपदिष्ट सिगालोवाद-सुत्त के सम्यक् अनुशीलन की भूमिका अनिवार्य प्रतीत होती है। मानव जीवन के अधिकतर पहलुओं का सम्बन्ध बुद्धोपदिष्ट सिगालोवाद-सुत्त से है, जिसके सम्यक् अनुशीलन से व्यक्ति स्वयं भी सुख-शान्ति की अनुभूति कर सकता है। यदि व्यक्ति अपने जीवन में सुख-शान्ति की अनुभूति करता हुआ समाज, देश एवं सम्पूर्ण विश्व को समस्याओं से मुक्त बनाकर सुख-शान्ति, समता, सौहार्द, भाईचारे एवं विश्व-बन्धुत्व की सुखद् भावनाओं की स्थापना करना चाहता है, तो उसे बुद्धोपदिष्ट सिगालोवाद-सुत्त के अनुशीलन से श्रेष्ठ एवं बुनियादी उपाय संसार में अन्यत्र नहीं मिल सकता है। इस प्रकार से यह कहा जा सकता है कि सामाजिक, पारिवारिक, व व्यवहारिक जीवन को सुखमय बनाने हेतु सिगालोवाद-सुत्त में वर्णित नैतिक मूल्यों का पालन बहुत ही प्रासंगिक है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1 दीघनिकाय (अनुवादक) भिक्षु राहुल सांकृत्यायन एवं भिक्षु जगदीश काश्यप, लखनऊः भारतीय बौद्ध शिक्षा परिषद्, बुद्ध विहार, 1979, पृ.271

2 ज्ञानादित्य शाक्य, बौद्ध धर्म-दर्शन में ब्रह्मविहार-भावना, अहमदाबादः रिलायबल पब्लिशिंग हाऊस, 2013, पृ.214

3 भदन्त बोधनन्द महास्थविर, बौद्ध चर्या पद्धति, लखनऊः भारतीय बौद्ध समिति, बुद्ध विहार, रिसालदार पार्क, 2002, पृ.38

4 ज्ञानादित्य शाक्य, बौद्ध धर्म-दर्शन में ब्रह्मविहार-भावना, वही, पृ.21

5 दीघनिकायपालि (पाथिकवग्गो) (हिन्दी-अनुवाद-सहिता) (अनुवादक एवं सम्पादक) स्वामी द्वारिकादास शास्त्री, वाराणसीः बौद्ध-भारती, 2009, पृ.736

6 वही

7 वही, पृ.741

8 वही, पृ.740

9 धम्मपद (अनुवादक) राहुल सांकृत्यायन, लखनऊः बुद्ध विहार, रिसालदार पार्क, 1986, पृ.11

10 वही, पृ.743